IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्रारंभिक मध्यकाल में दक्षिण भारत में बुनकर, वस्त्र उत्पादन और व्यापार

Shachi Tiwari (Research Scholar)

Deptt. Of Ancient History Culture & Archaeology

Nehru Gram Bharti (Deemed to be University)

Kotwa- Jamunipur, Prayagraj, U.P. – 221505

दक्षिण भारत में ईसवी सन् की प्रारंभिक भाताब्दियों से ही वस्त्र उद्योग प्रमुख ि"ाल्प रहा है और यह स्थिति आधुनिक काल तक बनी रही है। प्रारंभिक मध्यकाल में यह कला विभिन्न क्षेत्रों में ना सिफ विकसित हुई बल्कि समाज के सभी वर्गों के महत्व हेतु राजकीय संरक्षण, अभिजात वर्ग की मांगों, मंदिर की आव"यकता तथा सभी आर्थिक गतिविधियों का मुख्य केंद्र भी रही।

प्रारंभिक मध्यकाल से सदियों तक बुनाई के परंपरागत केंद्र कमोबे"ा काम करते रहे हैं। उनकी स्थान वि"ोश में विधयमानता का कारण कच्चे माल की उपलब्धता, वनस्पति रंगों और रंग चटक करने के पदार्थों की सहज उपलब्धता, कु"ाल कारीगर, परिवहन, विपणन की सुविधा एवं बंदरगाहों से निकटता आदि थी। काली मिट्टी वाले क्षेत्र जैसे तमिलनाडु के कोयंबटूर, मदुरई रामनाथपुरम, तिरूनेल्वेली : उत्तरी कोरोमंडल (आंध्र क्षेत्र) में चिराल, गुंटूर, एल्लूरः कर्नाटक में बीजापुर, धारवाड़, बेलगाम आदि बुनाई केंद्रों के लिए भी जाने जाते थे।

बुनाई समुदाय विभिन्न नामों से जाने जाते थे जैसे देवांग मूलतः आंध्र व कर्नाटक क्षेत्र से थे। कैक्कोल, सालिग समुदाय या साले या सालिया जो प्रायः पद्म साले और पट्टू साले के रूप में जाने जाते थे तमिलनाडु क्षेत्र से थे। आंध्र कर्नाटक क्षेत्र से जेदारा व सेनिगर जाति भी बुनकरों से संबंधित थी।

तमिल क्षेत्र में सालिया बुनकरों का एक उच्च वर्ग था जबकि कैक्कोल बुनियादी रूप से चोल भाासनकाल में भाासकों के खास सैन्यदलों के सदस्य या सैनिक हुआ करते थे। वे सैन्यकार्य के साथ–साथ बुनाई भी करते थे। तिरूमदैविलागम या मंदिर चौक में बुनकरों के पृथक मोहल्ले होते थे जिन्हें प्रायः कैक्कोल–त–तेरू कहा जाता था। सालिया उच्च स्तर के बुनकर होते थे जो भााही परिवार व समाज के अभिजात वर्ग के वस्त्रों की मांग की आपूर्ति करने के साथ ही मंदिर प्र"ाासन से गहरे रूप से जुड़े हुए थे।

चोल अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कपड़ें की किस्मों में *पुडवई* (कपड़े का लंबा टुकड़ा) *वेट्टी* (पुरूश परिधान) आदि आते थे। *f"ारोवस्त्र* समाज के उच्च वर्गों के लिए बुना जाता था वही *कंचुक* निचले तबके के लोग पहना करते थे। *f"ाल्प्पादिकारम* (उत्तर संगम महाकाव्य) में *तुन्नक्करार* भाब्द का वर्णन दर्जी के संदर्भ में मिलता है। पेरून्टुन्नन, रत्न तय्यन आदि भाब्द है जो दर्जी वर्ग का संकेत करते हैं। *तय्यन* अर्थात जो सिलाई करता है और *तय्यल* का अर्थ सिलाई है। कर्नाटक के अभिलेखों में *गोत्तली* अथवा *कोत्तली* के नाम से म"ाहूर दर्जी निगमों का भी उल्लेख मिलता है।

मलमल और छींट वस्त्र मसूलीपट्टनम में उत्पादित किए जाते थे परंतु अधिकत्र इनकी बुनाई होती थी। 'मानसोल्लास' में *विचित्र या छींट, सूत (कपास), रे"ाम (पुट्टूसूत्रम), बंधेज (tie&dye) – तंतु बंध* आदि का उल्लेख मिलता है। तमिल जैन ग्रंथ 'जीवक चिंतामणि' पुमपट्टू, पच्चिलईपट्टू आदि का जिक्र करता है जो रे"ाम की ही किस्में हैं। 12वीं भाताब्दी के कोयंबटूर से प्राप्त अभिलेख में *पट्टावल पट्टू (पटोला)* का उल्लेख मिलता है। मिताक्षरा से *तस्सोर (तसर)* का उल्लेख मिलता है जो कि वारंगल

से प्राप्त 14वीं भाताब्दी के अभिलेख *पच्चाई पट्टू और दसारी पट्टू* के रूप में उल्लेखित हैं।

रंगो और काँठ के ब्लॉकों का प्रयोग कपड़े की रंगाई और छपाई में किया जाता था, जैसे कुसुम (लाल सूरजमुखी), नीला (नील), मजिश्ट (मजिठ, लाल डाई) और तेजाबी भाोधक जैसे अरिश्ट, कुदुक्कई (हर्र)। 'मानसोल्लास' में विभिन्न प्रकार के रंगों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। दक्षिण भारत के 12वीं भाताब्दी के अभिलेखों में, वस्त्रों की बढ़ती मांगा के साथ ही बुनकरों और रंगरेजों पर लगाये जाने वाले करों का उल्लेख उत्तरोत्तर किया जाने लगा।

वस्त्र प्रौद्योगिकी के विकास का संकेत विभिन्न उपकरणों और औजारों के लिए प्रयुक्त भाब्दों से मिलता है जैसे ओटनी द्वारा कपास से बिनौले अलग करनाः ओटाई, पिंजन अथवा धुनाई का यंत्र, सूत कताई के लिए तकली, "ाटल। 'अभिज्ञान चिंतामणि' से भी इनके बारे में उल्लेख मिलता है। उर्ध्वाकार करघा अपरिश्कृत रूप में ही था (जम्बीर अभिलेख, ि"ामोगा जिला 1184ई0)। 'नयनार कुट्टार' नामक कैक्कोल समुदाय के गीतों से स्पश्ट होता है कि क्षैतिज करघों का भी प्रयोग होता था। चीन के साथ–साथ मध्य पूर्व (Middle-East) के कर्शण करघे (drawloom) से लोग संभवतः वाकिफ थे।

दक्षिण भारत में 11वीं भाताब्दी से मुसलमानों द्वारा बुनाई के फारसी तरीकों से *डिज़ाइन बनाने वाले करघे* (Patternedloom) अथवा अच्चू तारी के बारे में भी ज्ञान था, जिसका उल्लेख परांतक प्रथम के तिरूवोर्रियूर अभिलेख में मिलता है।

दक्षिण में अग्रणी वस्त्र उत्पादन केंद्र के तंजावुर, रामनाथपुरम, कांचीपुरम, मदुरई इत्यादि। तिरूनेल्वली जिले में पांड्य बंदरगाह कोरकइ के साथ, मदुरई एक महत्वपूर्ण सूत उत्पादन और बुनाई केंद्र था। उत्तरी कोरोमण्डल में मोतुपल्ली अपने रे"ाम के धागे और कपड़ के लिए जाना जाता था। वारंगल आपनी दरियों के लिए प्रसिद्ध था। वेनिस यात्री माकां पोलो मुत्फिली (मोतुपल्ली) के महीन मलमल की तारीफ करता है। मोतुपल्ली

को काकतीय भाासक गणिपतिदेव की ओर से एक वि"ोश चार्टर दिया था ताकि एक प्रमुख व्यापारिक केंद्र के रूप में उसको बढ़ावा दिया जा सके।

उत्तरी कर्नाटक में अनेक केंद्र जैसे सैमूर, होनावर, भटकल : दक्षिण कर्नाटक में मैसूर, ि"ामोगा (निम्न कोटि का सूत) : बीजापुर में तर्दल और दक्षिण कनारा क्षेत्र में मंगलौर प्रसिद्ध केंद्र है। चीनी रे"ाम कर्नाटक के बंदरगाहों पर आया करता था। बाजार में कपड़ा बैलों पर लादकर, काठगाड़ियों और गठरियों (तलैक्कट्टू) में सर पर ढोया जाता था। अब्दुल फिदा (13वीं भाताब्दी), चीनी यात्री चाऊ जु कुआ (13वीं भाताब्दी) और मार्को पोलो, रे"ाम, छींट व अन्य बुने वस्त्रों का उल्लेख करते हैं।

चोल भाासक कुलोत्तुंग प्रथम, कल्चुरी भाासक बिजन्ना और काकतीय भाासक गणपतिदेव के अधीन, व्यापार को राज्य संरक्षण लगातार मिलता रहा। इनके अभय"ाासन का अभिप्राय था – समुद्री मार्ग, विदे"ाों व भाहरों से आने वाले व्यापारियों हेतु वस्त्र इत्यादि समेत सभी बड़े निर्यातों को प्रोत्साहन देना।

खासकर चोल भाासकों द्वारा मालदीव, सिंहल और दक्षिण पूर्व ए"ाया पर विजय पाने से इन क्षेत्रों में तमिल क्षेत्र का व्यापारिक एकाधिकार स्थापित हो गया। ऐतिहासिक काल से ही वस्त्रों का निर्यात बड़े पैमाने पर होता आया है और यही सिलसिला 18वीं भाताब्दी तक चला। इस काल में दक्षिण–पूर्व ए"ाया भारतीय वस्त्रों के लिए एक प्रमुख बाजार बन गया। कपास के सक्रिय व्यापार का पता चीनी विवरणों से चलता है (पातुल – 14वीं भाताब्दी)। वस्त्र प"िचमी दे"ाों के बाजारों को भेजा जाने वाला एक प्रमुख निर्यात था जबकि चीनी रे"ाम चोल और पांड्य दे"ाों में आयात किया जाता था।

वस्त्र व्यापार का वाणिज्यिक संगठन व्यापारी निगमों के अधीन था (तिसई अयिस्तू, अंजुवण्णम, बलन्जीयर, मणिग्रामम्, अय्यावोले, ऐन्नरूंवर, पेक्कन्द्रु इत्यादि)। उन्हें वस्त्र उत्पादन और बिक्री के विभिन्न पहलुओं में वि"ोशज्ञता हासिल थी। इन व्यापारियों के वि"ोश मुहल्ले होते थे, जैसे कुरई, वणिनगर, अरूवई, वणिय चेरी आदि। 13–14वीं भाताब्दी ई0 का पिरून्मलई अभिलेख ऐसे अनेक मुहल्लों का संदर्भ देता था। परंतु वस्त्र,

व्यापर का कोई एकाधिकार विशयक वस्तु नहीं थी। यह बात सर्वविदित है कि व्यापारिक संगठनों की सुरक्षा हेतु स्वयं की सेना टुकड़ी हुआ करती थी। विभिन्न मण्डलमों में चेट्टी हुआ करते थे जैसे तमिल क्षेत्र में जयकोण्डा चोल मण्डलम्, कोन्गू मण्डलम्, केरल में मलईमण्डलम्। चिदाम्बरम् के सालिया चेट्टी का नगर में एक वि"ोश स्थान था। उनकी स्वयं की *सालिया नगरम्* थी। 'नगरम्' नामक सभा स्थानीय निवासियों की होती थी। यह व्यापारिक नगरों से संबंधित थी। सार्वजनिक कार्यों को करना इसका मुख्य काम था। सालिया समयांगल (संगठन) का संदर्भ बेलगाँव से प्राप्त कल्चुरी अभिलेख (1224ई0) से मिलता है।

वस्त्र उद्योग कराधान में भागिल थे – करघों पर कर (तमिल में तारी इरई, तारी कदमई), आंध्र व कर्नाटक में मग्गा देरे, डिजाइन वाले करघे पर अच्चू तारी तथा अन्य महसूल जैसे तारी पुदवई, पंजुपिली, परूती कदमई, पत्तदई नुलायम। कन्नड़ अभिलेखों से रंगरेजों पर लगने वाले *कैबन्ना या बन्निगे* नामक एक कर का पता चलता है। 12वी – 13वीं भाताब्दी में कर नियमित रूप से नगद या धन के रूप में वसूला जाता था। विज्ञाने"वर कृत 'मिताक्षरा' में पणम्, वरहन और मदई का उल्लेख मिलता है। 13वीं भाताब्दी में होयसल भासकों के अधीन अत्याधिक करों के खिलाफ विरोध प्रद"र्न के दृश्टांत काफी आम थे। राज्य यथा भासकों द्वारा समझौते के रूप में वि"ोशाधिकार और बड़े पैमाने पर रियायतें दी जाती थी।

13वीं और 14वीं भाताब्दी के उत्तरार्द्ध में कर्नाटक में स"ाक्त देवांग संगठन (देवांग पुरणम्), कांचीपुरम् में महानाडु, चोलों के अधीन प्र"ासकों और मंदिर प्रबंधकों के रूप में कार्यरत सालिया, मंदिर के सेवा समूहों के रूप में देवराड़ियार राज्य और समाज में बुनकरों के प्रभाव को द"ार्ाता है। इनके द्वारा मंदिरों को भूमि व उपहार दिए जाते थे। देवी–देवता जैसे *कामाक्षी चामुण्डा, कार्तिकेय* के साथ जुड़ी उनको उत्पत्ति संबंधी पौराणिक कथाएँ उनकी उच्च आनुश्ठानिक स्थिति की ओर इ"ाारा करती है। लेखाकार

के रूप में मंदिर की सेवा (उदाहरणार्थ – काँची में उरगम), समाज में बुनकर व उनकी स्थिति के आर्थिक महत्व में वृद्धि को इंगित करते हैं।

भू–स्वामित्व और जाति प्रत्यय जैसे कैक्कोल मुदालिस और बुनकरों को मिलने वाली उपाधियाँ जैसे पिदरन्, कनी, याची, कुदि–कनी प्रधानतः कृशक समाज में उनकी ऊँची स्थिति को द"ार्ात है। *सांगु व तांडु* जैसे प्रतीकों का प्रयोग, मंदिर सम्मान उनको मिलने वाले सामाजिक वि"ोशाधिकार थे। उनके परिवारों में जन्मी पहली लड़की को नर्तकी के रूप में मंदिर को समर्पित कर दिए जाने की परंपरा थी और पुरूश सदस्य को तेवरम् (पवित्र भजन) गाने का अधिकार दे दिया जाता था। बुनकरों को भी इंदगई – वलंगई प्रतिमान के अधीन वर्गीकृत किया जाने लगा, यह उदाहरण बुनकरों की समाज में मजबूत स्थिति को द"ार्ाता है।

निश्कर्श :

हमने अभी तक प्रारंभिक मध्यकाल में दक्षिण भारत के बुनाई के परंपरागत केंद्र विभिन्न बुनाई समुदाय, कपड़ों की विभिन्न किस्में और रंगाई, छपाई के विशय में, वस्त्र प्रौद्योगिकी, वस्त्रों का आंतरिक और बाहय व्यापार, वस्त्र उद्योगों में कराधान, भाासकों द्वारा व्यापार का संरक्षण, बुनकरों की समाज में स्थिति इत्यादि का अध्ययन किया। ब्रिटि"ा के भारत पर अधिकार (18वीं भाताब्दी) करने के साथ ही वस्त्र उद्योग दे"ा में अपनी निम्नतम स्थिति पर आ गया, जहाँ इस क्षेत्र में भारत का एकाधिकार था, पूरे वि"व में भारतीय वस्त्रों की अत्याधिक मांग थी और बड पैमाने पर निर्यात किया जाता था। वर्तमान समय में भी अर्थव्यवस्था में वस्त्र उद्योग ने स्थान प्राप्त किया है, परंतु निर्यात में हम प्राचीन स्थिति को प्राप्त नहीं कर सके। हमारे पड़ोसी दे"ा जैसे बांग्लादे"ा, चीन इत्यादि ने वस्त्र उत्पादन आर निर्यात पर वि"ोश ध्यान दिया है। बांग्लादे"ा की अर्थव्यवस्था को इस उद्योग से बहुत गति मिली है। भारत को भी इस संदर्भ में अनुकूल

परिस्थितियों का वातावरण बनाना चाहिए और एतिहासिक काल से प्रेरणा लेते हुए भारतीय वस्त्रों को वि"व पटल पर दोबार वैसे ही पहचान दिलाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. अब्राहम, मीरा (1988), टू मर्चेंट गिल्ड्स ऑफ साउथ इण्डिया, नई दिल्ली।
2. चक्रवर्ती, रनबीर (2020), ट्रेड एंड ट्रेडर्स इन अर्ली इंडियन सोसायटी, नई दिल्ली।
3. हॉल, के0 आर0 (1980), ट्रेड एंड स्टेटक्रॉफ्ट इन द ऐज ऑफ द चोलाज्, नई दिल्ली।
4. कुप्पुस्वामी, जी0आर0 (1975), इकॉनॉमिक कॅन्डी"ानस् इन कर्नाटक (A.D. 973-1336), धारवाड़।
5. रामास्वामी, विजया (1995), टैक्सटाइल्स एंड वीवर्स इन मिडिवल साउथ इंडिया, ओ0यू0पी0, नई दिल्ली।
6. सुन्दरम् के0 (1987), स्टडीज इन इकॉनॉमिक एंड सो"ाल कॅण्डी"ान्स इन मिडिवल आन्ध्र (A.D. 1000-1600), मछलीपट्टनम्।
7. अप्पादोराई, ए0 (1936), इकॉनॉमिक कंडी"ान्स इन सदर्न इंडिया, (A.D. 1000-1500), 2 खंड, मद्रास वि"वविद्यालय।
8. चट्टोपध्याय, बी0डी0 (1997), द मेकिंग ऑफ अर्ली मिडिवल इंडिया, ओ0यू0पी0, नई दिल्ली।
9- गौरव, प्र"ाान्त (2016), पूर्व मध्यकालीन भारत (लगभग 550–1200 ई0), नई दिल्ली।